6

किसान आन्दोलन

(Peasant Movement)

भारतीय इतिहास के लेखकों ने चाहे वे स्वदेशी हों अथवा विदेशी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं, आन्दोलनों व संघर्षों का वर्णन बहुत ही गैर ज़िम्मेदाराना ढ़ंग से किया है, किसान संघर्षों और आन्दोलनों को भी बहुत ही सतही तरीके से व्याख्या की गई है। अंग्रेज़ों, ज़मींदारों, साहुकारों और महाजनों के विरुद्ध असंगठित संगठन के रूप में किसी वर्ग ने यदि आन्दोलन चलाया है तो वह निश्चय ही किसान आन्दोलन है। किसान आन्दोलनों का इतिहास बिखरा पड़ा है। किसान आन्दोलनों का दंगों–फसादों, संघर्षों के रूप में वर्णन किया गया है। भारत के 80 प्रतिशत किसानों के आन्दोलनों की इतिहासकारों ने उपेक्षा की है। भारत के प्रत्येक राज्य के किसान आन्दोलनों का अपना इतिहास है। इसकी पृष्ठभूमि में अनेक क्षेत्रीय, स्थानीय पोषक तत्त्व हैं जिन्होंने किसानों को सामन्तवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने की प्रेरणा दी।

सैकड़ों वर्ष पूर्व हम ज़रा मुड़कर देखें कि अंग्रेजों का प्रवेश भारत में किस प्रकार हुआ और उनकी शोषक नीतियों ने आगे चलकर किसानों का किस प्रकार शोषण किया। अयोध्या सिंह अंग्रेजों के भारत में प्रवेश के संबंध में कहते हैं, ''पन्द्रहवीं सदी के अन्त में समुद्र के रास्ते हिन्दुस्तान से सीधा संबंध स्थापित करने के लिए पुर्तगाल, स्पेन और ब्रिटेन जोरों से चेष्टा करने लगे। .... 1500 ई. में पुर्तगालियों ने कालीकट में अपनी फैक्टरी बनायी। हिन्दुस्तान में यूरोप के पूंजीवादियों का प्रवेश यहीं से आरम्भ होता है। .... एक सौ वर्ष तक पुर्तगालियों को यूरोप के किसी दूसरे पूंजीवादी का मुकाबला करना नहीं पड़ा। 1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी, 1602 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी और 1664 में फ्रांसीसी ईस्ट इन्डिया कम्पनी बनी। पुर्तगाली पूंजीवादियों की तरह हिन्दुस्तान को लूटने के लिए अंग्रेज, डच और फ्रांसीसी पूंजीवादी इस देश की जमीन पर आ डटे।[1]'' यह काल का वह बिन्दु है जहाँ से भारत के सभी वर्गों का शोषण आरम्भ होता है।

---

1. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 1.

Scanned with CamScan

किसान का सीधा संबंध भूमि से है। उसकी ज़मीन उसका जीवन है। उसके जीने का आधार जमीन है। खेती है। फसल है। ज़मीन से उत्पन्न होने वाली चीज़े उसकी आय का स्त्रोत है। इस स्त्रोत का ही जब दोहन होने लगे और किसानों का शोषण होने लगे तो क्रांति और आन्दोलन की चिन्गारी कहीं अन्दर ही अन्दर सुलगने लगती है। भूमि हीन किसानों एवं छोटे किसानों का शोषण विभिन्न युगों की सामन्ती और पूंजीवादी के तहत किया जाता रहा है। प्रत्येक युग ने शोषण के अपने आधार तैयार किये। रजनी दास दत्त शोषण के इतिहास को विभिन युगों में बांटते हैं। उनका विचार है ''भारत में साम्राज्यवादी शासन के इतिहास में तीन मुख्य युग सामने आते हैं। पहला युग प्रारम्भिक पूंजीवाद का युग है जिसकी प्रतिनिधि ईस्ट इन्डिया कम्पनी थी। जहाँ तक साम्राज्यवादी व्यवस्था के साधारण स्वरूप का संबंध है, यह युग अठारहवीं सदी के अन्त तक चला जाता है। दूसरा औद्योगिक पूंजी का यानी मशीन इस्तेमाल करने वाले पूंजीवादी उद्योगों का युग है, जिसने उन्नीसवीं सदी में भारत के शोषण का एक नया आधार तैयार किया। तीसरा बैंक-पूंजी का आधुनिक युग, जिसने शोषण की पुरानी व्यवस्था के खण्डहरों पर भारत को लूटने की अपनी एक खास ढ़ंग की व्यवस्था जारी की.....[2]''

अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियाँ किसानों का मन चाहे रूप में दमन करने लगी। उनके साथ शत्रुओं जैसा व्यवहार करने लगी। उन्हें गुलाम की तरह जीवनयापन करने के लिये बाध्य किया जाने लगा। सम्पूर्ण भारतवर्ष का किसान अंग्रेज़ी शासकों के उत्पीड़न का शिकार हो गया। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के सौदागरों को भारत को लूटने का रास्ता देखा गया। इस संबंध में रजनी दास दत्त लिखते हैं-

कम्पनी की तरफ से बार-बार यह माँग की जाती थी कि लूट की आमदनी को और बढ़ाया जाय, और बढ़ाया जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि ज़मीन की मालगुजारी को अंधाधुंध बढ़ा दिया गया। हालत यहाँ तक पहुंची कि अक्सर किसानों से बीज के नाज और बैल तक छीन लिये जाते थे। बंगाल के अन्तिम भारतीय शासक के शासन काल के आखिरी वर्ष में, यानी 1764-65 में 817,000 पौण्ड की मालगुजारी वसूल हुई। कम्पनी के शासक के पहले वर्ष में यानी 1765-66 में बंगाल में 1,470,000 पौण्ड की मालगुजारी वसूल हुई और जब 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने इस्तमरारी बन्दोबस्त शुरू किया, तो उन्होंने 3,400,000 पौंड की मालगुजारी बांधी।[3]''

यह उद्धरण इस बात का प्रमाण है कि भारतीय किसानों का अंग्रेजी शासकों ने इतना शोषण किया कि गरीब और गरीबी दोनों उनके भाग्य से जुड़ गए। वे इन्सान होते हुए भी उनसे पशुओं की तरह व्यवहार किया जाता था। भारतीय जमींदारों, साहूकारों, ताल्लुकेदारों और महाजनों ने अंग्रेजों को खुश करने के लिये किसानों का जी भर के शोषण किया। इस संबंध में रजनी दास दत्त यह कहते हैं-

---

2. रजनी दास दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पृष्ठ 46.
3. रजनी दास दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पृष्ठ 49.

Scanned with CamScanner

''साम्राज्यवादी शोषण का अन्त में यह परिणाम हुआ कि यदि किसान किसी तरह भूमि हीन खेत मज़दूरों में मिलने से बच गया, तो उस पर तीन तरफ का बोझा लद गया। सरकार की मालगुजारी का बोझा सभी पर पड़ता था। इसके अलावा अधिकतर किसानों पर जमींदार के लगान का बोझा भी पड़ता था। और साहूकार के सूद का बोझा उससे भी बड़ी संख्या में ढोना पड़ता था। इस तरह कुल मिलाकर किसान की पैदावार का कितना हिस्सा उसके हाथ से निकल जाता था।[4]''

किसानों से कमर तोड़ मेहनत ली जाती थी। काम के घन्टों की कोई सीमा नहीं थी। दिन में भी उनसे काम लिया जाता था और रात में भी और मजदूरी के नाम पर 1 रु. मिलता था। शहदा और तालोदा महाराष्ट्र राज्य के उत्तर के दो देहाती इलाकों के अध्ययन के आधार पर –

''दस घन्टों तक काम करने के बाद उनको 1 रुपये मज़दूरी मिलती है। एक सालदार (ठेके पर श्रमिक) को 600 से 800 रु. की सलाना आय से सन्तुष्ट होना पड़ता था। उसे बहुधा रात में भी काम करना पड़ता है. इसके अलावा जमीन्दार के लिये उसे गंदें से गंदा काम करना पड़ता है। जमींदार की सनक और मज़दूर की गरज़ से मज़दूरी का परिणाम निश्चित होता है। मज़दूर को कोई छुट्टी नहीं मिलती। अपने परिवार (बहुधा दस तक सदस्य) को भूखों मरने से बचाने के लिए उसे महाजन से कर्ज लेना पड़ता है जो मौजूदा संबंधों के तहत वह अपने जीवन भर में कभी चुका नहीं पाएगा। इस प्रकार मालिक गुलाम संबंध बनता है, और वह मजबूर होता है कि वह अपने सारे परिवार को दासता में लगाए, जिसका निर्णय पूरी तरह जमींदार के हाथ में होता है।[5]''

निश्चय ही दमनकारी व्यवस्था किसानों को जमींदारों के विरुद्ध आन्दोलन करने की प्रेरणा दे रहे थे। इस नारकीय और पशु समान जीवन से किसानों में आग सुलग रही थी। वे एक ऐसे अवसर की तलाश में थे कि किसान एक जुट होकर जमींदार, महाजन और साहूकारों के शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करें। उनके अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ें। एक दिन शहदा के किसान आन्दोलन की ओर बढ़ गये। ''क्रांतिकारी चेतना से कार्य कर रहे मजदूरों और किसानों ने 'श्रमिक संगठन' की स्थापना की, और इस संघर्ष समिति में भील और शोषित हिन्दू जातियाँ एक जुट हो गई। अपने संघर्ष को उन्होंने इन आर्थिक माँगों से जोड़ा : कार्यरत जन समुदाय, विशेषकर आदिवासियों की आर्थिक स्थिति में बुनियादी सुधार, ठेके के मजदूरों के लिए 50 प्रतिशत और वेतन वृद्धि, निश्चित कार्य समय और प्रति सप्ताह एक सवेतन छुट्टी[6]'' आदि।

भारतीय किसान एक तरफ स्वदेशी सामन्तवादी चक्की में पीसा जा रहा था और दूसरी

---

4. रजनी दास दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पृष्ठ 96.
5. वी, सर्मा, मार्ला, भारत में किसान संघर्ष, पृष्ठ 54.
6. वी. सर्मा, मार्ला, भारत में किसान संघर्ष, पृष्ठ 55.

Scanned with CamScanner

तरफ अंग्रेजी शासन उसका मन चाहे रूप में शोषण कर रहा था। किसान लगान के अधिक भार से टूट रहा था। कांग्रेस के नेतृत्व को जितनी जोर-दारी से इसका विरोध करना चाहिए था, नहीं किया। उस समय की समकालीन परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए डॉ. महेन्द्र प्रताप अपने शोध-ग्रन्थ 'उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन' में लिखते हैं-

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक दौर के नेताओं के विचार से भारत में कृषि तथा किसानों की विपन्नता के प्रमुख कारण राजस्व का अधिक अनुमान या लगान का अधिक निर्धारण और सरकारी हिस्से के जल्दी-जल्दी बदलने के कारण इसका अनिश्चित रहना और राजस्व प्रणाली की कठोरता थी जिससे कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता था। राष्ट्रीय नेतृत्व के अनुसार इस दोषपूर्ण तथा क्रूर राजस्व-व्यवस्था का भारतीय कृषि पर बहुत ही दमनकारी प्रभाव पड़ा ..... राष्ट्रीय नेतृत्व के विचार में लगान की अधिकता अकालों की अधिकता तथा भयावहता का कारण भी थी।[7]

अंग्रेजों का शिकंजा भारत पर कसता जा रहा था। वे इस तथ्य से निश्चित हो गये थे कि भारत में उनका विरोध करने की न तो शक्ति है और न मनोबल, यहाँ के निवासी शान्ति प्रिय, दब्बू और भाग्यवादी हैं। ये बहुत सन्तोषी हैं। इन्हें यदि भर पेट भोजन न मिले, रहने को निवास न हो, बेरोजगार हो तो भी ये शासन के विरुद्ध खड़े नहीं होते हैं। भारतीयों की इस मनोवृत्ति ने अंग्रेजों को लूटने का खुले अवसर दिया। अंग्रेजों की नीतियों और कानूनों को इस तरह गढ़ा गया कि भारतीय आर्थिक सामाजिक व्यवस्था से अधिकतम लाभ उठाया जा सके। यह सामन्तवादी और पूंजीवादी व्यवस्था की एक चाल होती है कि आम आदमी को दो समय का भोजन प्राप्त करने में ही उलझाये रखो फिर वह शासन को ही सब कुछ समझने लगेगा। वही गरीबों का मसीहा बन जाता है। शायद इसीलिये निर्धन, दरिद्र और गरीबी से त्रस्त जनता राजा को ही भगवान के रूप में देखती थी।

एल. नटराजन अंग्रेजी शासन व्यवस्था में किसानों को किस तरह प्रताड़ित और शोषण किया जाता था, उस संबंध में लिखते हैं ''इस बीच भारतीय समाज के समूचे सामाजिक और आर्थिक आधार में एक जबरदस्त रद्दोबदल हो रहा था। अंग्रेजों के जमीन के बन्दोबस्त, मालगुजारी की ऊंची दरें और एक ऐसी न्याय व्यवस्था जो जनता के हितों के खिलाफ जाती थी- इन सबका फायदा उठाकर, जमीदारों ने आम किसान जनता के ऊपर अपना शिंकजा कसना शुरू कर दिया था।[8]''

डॉ. ए. आर. देसाई किसानों, मालिक किसानों, बटाईदारों और खेत मजदूरों के आन्दोलनों के कुछ बिन्दुओं की ओर संकेत करते हैं[9]:

1. 1918 के बाद किसानों में राजनीतिक चेतना आरम्भ हुई।

---

7. महेन्द्र प्रताप, उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन, पृष्ठ 21-22.
8. एल. नटराजन, भारत के किसान विद्रोह, पृष्ठ 10.
9. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि, पृष्ठ 150.

Scanned with CamScanner

2. 1870 और 1897 के बीच बड़े अकाल पड़े।
3. 1870 में बंगाल के बटाईदार आर्थिक संकट के शिकार बने।
4. इस समय बंगाल और संथाली देहाती इलाकों में अराजकता की स्थिति थी।
5. अमेरिकी गृह-युद्ध के बाद भारतीय किसानों पर ऋण का बोझ काफी बढ़ गया।
6. 19वीं सदी के अन्तिम दशक में, जब सूदखोरों ने बेदखली का भय दिखाया तो पंजाब के किसानों ने विद्रोह कर दिया।
7. 1917-18 में गांधी के नेतृत्व में बिहार के चंपारण जिले के किसान नील बगीचों के मालिकों, जो अधिकांशतया यूरोपीय थे,के विरुद्ध उठ खड़े हुए।
8. असहयोग आन्दोलन के दौरान किसानों में राजनीतिक चेतना आई।
9. दो और किसान संघर्षों की चर्चा आवश्यक है। एक तो नरसिपत्तन तालुका के कोया लोगों का संघर्ष ..... दूसरा रायबरेली, सीतापुर और उत्तरप्रदेश के अन्य जिलों के किसानों का संघर्ष। लेकिन ये संघर्ष स्वतः स्फूर्त थे, उन्नीसवीं सदी के संघर्षों जैसे।
10. गुजरात में बरदोली जिले के किसानों के दो संघर्ष हुए : एक 1928-29 में और दूसरा 1930-31 में।
11. नागरिक अवज्ञा आन्दोलन के बाद किसानों के स्वतंत्र संगठनों की स्थापनायें तेजी से होने लगी।

कृषक श्रमिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि में अनेक ऐसे पोषक तत्त्व हैं जो शताब्दियों से कृषि समाज में समाहित हैं। ये तत्व कृषि और कृषि समाज में विषमताओं को बनाये हुए हैं। ये विषमतायें कृषि समाज को पनपने नहीं देती। इसीलिये समय-समय पर किसानों ने विद्रोह और आन्दोलन किये हैं। इस संबंध में रजनी दास दत्त का विशलेषण दृष्टव्य है[10]-

1. राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में खेती का स्थान अधिकाधिक असन्तुलित होता जाता है, उसके साथ-साथ खेती पर आबादी का दबाव जरूरत से ज्यादा बढ़ता जाता है।
2. खेती के विकास में ठहराव आ जाता है और उसका पतन होने लगता है, जमीन की उपज कम रहती है, श्रम का अपव्यय होता है ..... खेती के कुल रकबे में कमी आने लगती है।
3. जमीन के लिए किसानों की भूख बढ़ती जाती है, उनकी जोते बराबर, छोटी होती जाती है .....ऐसे जोतों का अनुपात बढ़ता जाता है जिनके सहारे किसान के लिए अपनी गुज़र करना असम्भव हो जाता है।
4. ज़मींदारी प्रथा का विस्तार बढ़ता जाता है ..... ऐसे लोगों की संख्या बढ़ जाती

10. रजनी दास दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पृष्ठ 98.

Scanned with CamScanner

है जो खेती नहीं करते और मुफ़्त में लगान वसूलते हैं और अधिकाधिक किसानों की जमीनें इन मुफ़्त खोरों के हाथों में जाने लगती है।

5. जिन किसानों के पास थोड़ी बहुत ज़मीन बचती है उन पर कर्ज़ का बोझ बढ़ता जाता है।

6. किसानों की ज़मीने कर्ज़े के एवज में उनके हाथ से अधिकाधिक निकलकर साहूकारों और सट्टेबाजों के हाथों में पहुंचती जाती है।

7. 1921 में तमाम खेती करने वालों का पाँचवाँ हिस्सा खेत मजदूरों का था। दस वर्ष के अन्दर यानी 1931 में एक तिहाई खेती करने वाले खेत मजदूर बन गये।

भारतीय ग्रामीण समाज की सामन्ती और पूंजीवादी व्यवस्था में किसान खाने को मोहताज हो गया। सरकार ने भी किसानों की समस्याओं से मुँहमोड़ लिया। किसान का अन्तिम औज़ार आन्दोलन ही बचा था। भूखे मरने से अच्छा था शोषण कारियों के विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन किया जाय। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सन्थालों ने विद्रोह का बिगुल बजाया फिर आन्दोलन और विद्रोह का क्रम थमा नहीं। अयोध्या सिंह का यह मानना है कि, ''पलासी और बकसर के युद्धों में ब्रिटिश पूंजीवादियों की विजय के बाद ही हम किसानों और कारीगरों को इन नये लुटेरों और उनके समर्थक जमींदारों तथा साहूकारों से संघर्ष करते पाते हैं। उनका पहला विद्रोह इतिहास में सन्यासी विद्रोह के नाम से मशहूर है। यह विद्रोह 1763 में बंगाल और बिहार में शुरू हुआ और 1800 तक चलता रहा।'' किसान आन्दोलन का क्रम आज भी रुका नहीं है। निश्चय ही स्वतंत्र भारत में इसके स्वरूप,आकार और संगठन में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण उस भारतीय किसान की परिस्थितियों का है जिसने किसानों को शोषण के विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन करने की प्रेरणा दी।

किसान आन्दोलनों का निश्चित काल बताना एक जोखिम भरा कदम है पर इतना तो सत्य है कि किसानों ने सैकड़ों वर्ष तक ज़मींदारों, साहूकारों, महाजनों, सामन्तों के अमानवीय अत्याचार सहे हैं। किसानों से जीने का अधिकार छीन लिया गया। पशुओं से भी निम्न उनकी स्थिति थी। इस जुल्म और शोषण के विरुद्ध चिंगारी तो कहीं उनके मध्य थी जो एक दिन आग की लपटों की तरह फैल गयी। इतना सत्य है कि आरम्भिक किसान आन्दोलन असंगठित थे पर समय के साथ किसानों की चेतना ने उन्हें संगठित होकर आन्दोलन करने की प्रेरणा दी।

हम यहाँ पर कुछ महत्त्वपर्ण किसान-विद्रोह और आन्दोलनों पर संक्षेप में विचार करेंगे जिससे पाठकों का इस आन्दोलन के समग्र रूप से परिचय हो सके। साथ ही किसान आन्दोलनों में किसान की भूमिका और बलिदानों से भी आपका परिचय हो सके।

Scanned with CamScanner